

प्रगतिवाद

हिंदी-साहित्य का इतिहास में आधुनिक काल में छायावाद के बाद आरंभ के चौथे चरण को प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित साहित्य-रचना का युग स्वीकार किया गया है। इसका आरंभ सन 1936 के आस-पास से स्वीकारा जाता है। इससे पहले वाले छायावादी-युग की कविता कल्पना-प्रधान थी, पर अब कविगण कल्पना के आकाश से उतरकर जीवन के यथार्थ से प्रेरणा लेकर धरती पर पैर जमाने लगे। फलस्वरूप कविता की जो नई धारा चली, वह प्रगतिवादी काव्यधारा कहाई। गद्य-साहित्य के विधायक रूपों में भी अब काल्पनिक आदर्शों के स्थान पर यथार्थ समस्याओं और प्रश्नों का चित्रण होने लगा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रगतिवादी चेतना ने साहित्य के गद्य-पद्यात्मक सभी रूपों को समान स्तर पर प्रभावित किया।

मानव अपने मूल स्वभाव से ही परिवर्तनशील और प्रगतिवादी माना जाता है। फिर दूसरे विश्व-युद्ध के प्रभाव और परिणामस्वरूप अब जीवन के हर क्षेत्र में परिवर्तन आने लगा था। फ्रांस और रूस से होने वाली जन-क्रांतियों ने तो मानव-चेतना को प्रभावित किया ही, रूसो, वाल्टेयर, कार्लमार्क्स और फ्रायड आदि चिंतकों के विचारों ने भी जीवन और समाज में आमूल-चूल परिवर्तन लाने की प्रेरणा प्रदान की। वर्ग-संघर्ष ने आर्थिक-औद्योगिक क्षेत्रों में संघर्ष की नींव डाली। वैज्ञानिक खोजों के कारण भी जीवन और समाज के परंपरागत रूपों में क्रांति आई। अब मनुष्य महज अपनी या व्यक्ति की नहीं, बल्कि समूह की बात सोचने लगा। जीवन में यांत्रिकता के बढ़ जाने के कारण कई तरह की जटिलताएं भी आती गईं। भेद-भावों से ऊपर उठकर समानता का भाव भी जीवन-समाज में जागृत हुआ। इन सारे परिवर्तनों के मूल में विद्यमान चेतना को ग्रहण कर अपने गद्य-पद्यात्मक रूपों में साहित्य जो नए रूप में सिरजा जाने लगा, वही वास्तव में प्रगतिवाद कहलाता है। एक आलोचक के अनुसार- 'साहित्य अपने मूल स्वभाव में जीवन का अनुगामी तो होता ही है, कई बार उससे आगे बढ़कर वह मानव-जीवन के लिए संभावित सत्यों एवं प्रगतियों की खोज भी करता है। इसी कारण वह जीवन के समान ही प्रगतिशील है। कवि और साहित्यकार किसी भी रुढ़ परंपरा के अधिक दिनों तक अनुयायी बनकर नहीं रह सकते। उनकी चेतना जीवन में आने वाले परिवर्तनों से अनुप्राणित होकर स्वतः ही नव्यता की ओर अग्रसर होती रहती है। उसी नव्यता की ओर अग्रसर होने वाली प्रवृत्ति ने ही छायावादी युग के अंतराल से एक

नई प्रवृत्ति को जन्म दिया। वह प्रवृत्ति थी मानव-प्रगतियों का दमन, शोषित-पीड़ित मानव के अधिकारों की ओर जीवन-समाज का ध्यान आकर्षित करना एवं नई सहज परिवर्तित बौद्धिक-वैज्ञानिक प्रगतियों की ओर मानव-चेतना को उन्मुख करने का सशक्त प्रयास। परिणामस्वरूप छायावादी स्वरों के मध्य से ही जो नया स्वर प्रस्फुटित किया गया।' यह मान्यता स्पष्ट संकेत करती है कि छायावादी वायवता के प्रतिकारस्वरूप ही हिंदी-काव्य क्षेत्र में प्रगतिवाद का आरंभ एवं विकास संभव हो सका। यह एक निश्चित सत्य है।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि प्रगतिवाद का आरंभ सन 1936 के आस-पास हुआ था। उसके चार वर्षों अर्थात् सन 1940 तक इसा क्रमशः विकसित रूप सामने आने लगा। उसके बाद से आज तक की हिंदी-काव्य की यात्रा वास्तव में प्रगतिवाद के विभिन्न एवं विविध आयामों की यात्रा कही जा सकती है। छायावाद की एक धानहालावाद और दूसरी राष्ट्रवाद के रूप में विकसित हुई थी। इस राष्ट्रवादी-काव्यधारा का ही अगला पड़ाव प्रगतिवाद कहा जा सकता है। राष्ट्रवादी कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' द्वारा रचित एक कविता से प्रगतिवाद का आरंभ स्वीकार किया गया है। उस प्रसिद्ध कविता के आरंभ की पंक्तियां देखिए –

‘कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाए।
नियु और उपनियों के ये,
बंधर टूटकर छिन्न-भिन्न हो जाएं,
विश्वभर की पोषक वीणा-
के सब तार मूक हो जाएं।’

यहां जो उथल-पुथल यानि क्रांति मचाने और विश्वभर की वीणा के तार टूटने अर्थात् परंपराओं, अंध रूढ़ियों के समाप्त होने की कामना की गई है, वास्तव में वही प्रगतिवाद की मूल चेतना, लक्ष्य, प्रयोजन एवं हुंकार भी है। विद्वान यह भी मानते हैं कि छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की 'परिवर्तन' शीर्षक कविता से भी प्रगतिवादी चेतना के भाव और विचार दिखाई देने लगते हैं। जीवन का कोई भी क्षेत्र प्रगति-कामना से बचा न रह सका। सभी जगह अस्तित्व रक्षा का गहरा भाव जागकर 'सड़े-गले अतीत के विरुद्ध गहरा असंतोष एवं

विद्रोह का स्वर मुखरित करने लगा।' कवि और साहित्यकार उन सबके स्वर-से-स्वर मिलाकर अपने-अपने सृजन में दत्तचित हो उस सबका प्रतिनिधित्व करने लगे। फलस्वरूप यह नई प्रगतिवादी चेतना चारों ओर हर स्तर पर मानव-मन और जीवन-समाज को आंदोलित करने लगी। इसी संबल को पाकर शोषित-पीडित जन अपने को मानव समझकर संघर्षरत होने लगा। उस संघर्षमयी चेतना का काव्यात्मक चित्रण ही साहित्य-जगत में प्रगतिवाद के नाम से जाना और पुकारा जाने लगा।

कार्लमार्क्स के द्वंदात्मक भौतिकवादी जीवन-दर्शन में प्रभावित प्रगतिवाद, पूंजीवाद और पूंजीवादी चेतना को मानवता का सबसे बड़ा दुश्मन स्वीकार करता है। इसकी मान्यता है कि जब श्रम और पूंजी का समान विभाजन होने लगेगा, तभी जाति-वर्गहीन समाज की स्थापना संभव हो सकेगी। जो इस वाद का चरम लक्ष्य है। जन-कल्याण और समाजवादी समाज की स्थापना के इस लक्ष्य को पाने के लिए प्रगतिवाद वर्ग-संघर्ष को आवश्यक मानता है। इसके लिए ही कवि सर्वहारा वर्ग की समस्याओं को काव्यों में उतराते, व्यक्ति का विरोध कर समूह का महत्व स्वीकारते, सभी रूढ़ियों का विरोध करते हुए दिखाई देते हैं। कवि और लेखक आम जनों को सभी तरह की कुंठाओं से छुटकारा दिलाने का प्रयास भी करते हैं। यही कारण है कि प्रगतिवादी साहित्य में कल्पना को कतई महत्व नहीं दिया जाता। उसके स्थान पर जीवन में यथार्थ का ही उदघाटन किया जाता है। सभी परंपरागत विषयों की युगानुकूल नवीन एवं उपयोगितावादी व्याख्याएं की जाती हैं ताकि सभी प्रकार के आडंबरों, पाखंडों और कुरूपताओं से जीवन को मुक्ति मिल सके। धर्म, भाज्य और भगवान को भी नितांत अनुपयोगी, मात्र विडंबना और शोषित-पीडित को और भी धोखे में रखकर शोषण के अस्त्र कहा जाता है। कुल मिलाकर सामूहिक स्तर पर और भौतिक मूल्यों के आधार पर मानवता का हित साधना ही प्रगतिवादी काव्यधारा का चरम लक्ष्य है।

प्रगतिवादी काव्य-चेतना में यथार्थ बोध और यथार्थ चित्रण के नाम पर कई तरह की कमियां भी रेखांकित की जाती हैं। मानवता की मात्र कुरूपताओं का ही चित्रण, वह भी कई बार अश्लील वीभत्स रूप में, प्रगतिवादी धारा की सबसे प्रमुख कमी मानी जाती है। यथार्थ और प्रगति का अर्थ केवल वीभत्स, कुरूप और गंदगी का यथातथ्य चित्रण ही नहीं होत, अच्छे और स्वरूपवान का चित्रण करना भी हुआ करता है। केवल निराशाओं और कुंठाओं का चित्रण करने वाला साहित्य भी सच्चे अर्थों में प्रगतिवादी नहीं हो सकता। इसके स्थान पर

मानवता का आशावादी यथार्थ स्वर मुखरित होना चाहिए। हमारे विचार में कलात्मकता को तिलांजलि देकर, भाषा की भास्वरता के स्थान पर मनगढ़ंत बातों को पश्रय देकर भी मानव-प्रगतियों का वास्तविक काव्यात्मक चित्रण संभव नहीं हो सकता। इसी प्रकार वर्ग-संघर्ष की तलवार लटकाए रखना भी उचित नहीं कहा जा सकता। इन बातों का निराकरण करके इस तथ्य का ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि जीवन और साहित्य आत्मिक स्तर पर स्वतः स्फूर्त ढंग से प्रगतिवादी हुआ करते हैं। आवश्यकता है कि उस स्वतः स्फूर्त अस्मिता को हमेशा जगाए और उजागर रखा जाए। तभी प्रगतिवाद का वास्तविक लक्ष्य पाया जा सकता है।